---: कृतज्ञता :---

प्रस्तुत शोध कार्यमें मुझे अनेक मान्यवर व्यक्तियोंकी सहायता लेनी पडी । सर्व प्रथम मैं आदरणीय प्राचार्य शिवाजीराव भोसलेजी की ऋणी इसलिए हूं कि उनसे मुझे उच्च शिक्षाकी प्रेरणा मिली ।

प्रस्तुत शोध प्रबंधके प्रारूपकी परिकल्पना से लेकर लेखन तक के समस्त क्रिया- कलापोंमें मुझे समय समयपर विभिन्न सुझावों तथा निर्देशोंके माध्यमसे जो अमूल्य सहायता श्रध्देय डा॰ व्ही॰व्ही॰ कोटबागेजी से प्राप्त हुई है । उसके लिए मैं उनकी आजन्म ऋणी रहूंगी । साथ ही पूज्य डा॰ व्ही॰व्ही॰ द्रवीडजी का भी मुझे बहुमोल मार्गदर्शन मिला । इसलिए मैं उनकी भी हृदयसे आभारी हूं ।

इस शोध कार्यमें मुझे हमारे महाविद्यालयके हिन्दी विभाग प्रमुख- प्राध्यापक-श्रीवास्तवजी और मेरे अन्य सहयोगीयोंका भी बहुमोल सहकार्य मिला। इसलिए मैं कृतज्ञ हूं ।

साथ ही हमारे महाविद्यालयके ग्रंथपाल, उनके सहकारी और शिवाजी विद्यापीठ,कोल्हापुर के ग्रंथालयके कर्मचारी आदि का आभार मानना मैं उचित मानती हूं ।

प्रस्तुत विषय के विभिन्न क्षेत्रोंसे संबंध सामग्री के चयन-संयोजन एवं इसकी व्यवस्था में मुझे जिन विव्दानोंकी कृतियोंसे सहायता मिली है । खासकर डा॰ इंदिरा जोशी कृत " हिन्दी उपन्यासोंका लोकवार्तापरक अनुशीलन " तथा डा॰ नृपेंद्र प्रसाद वर्मा व्दारा लिखित " पद्मावत का लोकतात्त्विक अध्ययन " का आधार मैंने ग्रहण किया है । मैं उनके प्रति भी अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती हूं ।

-----सौ॰ सुनीता मधुकर जाधव ।

. . . . . .

: प्राक्कथन :

भारतीय लोगोंके मनमें आजतक लोकतत्त्वोंके लिए आदरणीय स्थान रहा है । लोकतत्त्वोंकी दृष्टिसे हमारा अतीत बडाही गौरवशाली रहा है । हमारे यहाँ प्राचीन कालसे आजतक "लोक" का और लोकतत्त्वोंका बडाही निकटका संबंध रहा है ।

लेकिन आज जब हम यांत्रिक युगकोसाथमें लेकर इक्कीसवी शतीकी ओर जा रहे है, अब समय आ गया है कि विश्वके अत्युच्च शिखरपर बैठे भारतका कुछ पुनर्विलोकन करें तो दिखाई देता है कि अब हम संसारसे कटते चले जा रहे हैं। मेरी दृष्टिसे इसके तीन कारण दिखाई देते हैं ।

(१) पाश्चात्योंका अंधानुकरण ।

(२) विज्ञानकी प्रगति ।

(३) न्यूनगंड ।

(१) पाश्चात्योंका अंधानुकरण --- भारतका इतिहास देखकर हम यह कहनेको बाध्य हो जाते है कि अनेक जातियोंके यहाँ आनेसे भारतीय परंपराएं प्रभावित तो हुई, लेकिन बदली नहीं । पर अंग्रेजोंकी बात कुछ और है । वे तो यहांसे चले गये फिर भी हर क्षेत्रमें पाश्चात्योंका अंधानुकरण करनेकी हमारी प्रवृत्तिसे आज हमारे लोकतत्त्व खतरेमें पड गये हैं । इस तरह लोकतत्त्वोंका नाश हमारे लिए बडे दुर्भाग्यकी बात होगी ।

(२) विज्ञानकी प्रगति --- विज्ञानने जीवनकी मान्यताओंको बदल दिया है । इतनाही नहीं आजका सारा का सारा युग विज्ञानकी चोटमें आ गया है । इसका नतीजा यह हो रहा है कि बुद्धिवादका जोर बढ रहा है और हृदयपक्ष छूटता जा रहा है । आजके बौद्धिक एवं वैज्ञानिक युगकी मान्यताएं लोकतत्त्वोंकी ओर देखकर नाक भौं सिकोड रही हैं क्योंकि उनकी दृष्टिमें लोकतत्त्व विवादग्रस्त-अयथार्थ -काल्पनिक है ।

(३) न्यूनगंड —— हमारा जो कुछ भी है, वह त्याज्य है। इस धारणाने हमें ग्रस्त किया है। इसलिए हम पाश्चात्योंके बीते युगकी जूठनको अपना समझकर गले लगा रहे हैं और हमारा अपना जो असली, इस मिट्टिकी उपज है इसका अनादर करते हैं। यही विडंबना है।

इन्हीं तीन तत्त्वोंने हमारे लोकतत्त्वोंको ग्रस्त लिया है। हमारे लोकतत्त्वोंको बडा खतरा पैदा हो गया है।

वर्तमानमें और आनेवाले भविष्यमें अगर ऐसीही स्थिति कायम रही तो मनमें विचार आता है, कि कहीं हम हमारा गौरवशाली अतीत-सुवर्णकाल भूलकर अपनेही पावोंपर कुल्हाडी तो नहीं मारेंगे ?

लोकतत्त्वोंकी ऐसी अवस्थाके लिए स्वयं हम ही जिम्मेदार होंगे और आनेवाली पीढी हमें कभी भी क्षमा नहीं करेगी। इतनाही नहीं सबसे बडा खतरा तो तब पैदा होगा जब कुछ वर्षोंतक ऐसीही स्थिति कायम रही तो निश्चित इससे हमारे लोकतत्त्वोंका नामोनिशां मीट जानेका खतरा पैदा हो गया है।

वैसे देखा जाय तो लोकतत्त्वोंके बारेमें मैं बडी आशावान हूं क्योंकि भारतीय संस्कृतिका बहुत बडा इतिहास है, लोकतत्त्वोंकी विशाल परंपरा है। प्रो॰ मुहम्मद इकबाल के समर्थ शब्दोंमें मै कहना चाहती हूं ------

"यूनानों, मिस्रों, रुमां, मिट गये सारे जहांसे
अबतक मगर है बाकी, नामोनिशां हमारा।"

यह विवादस्पद नहीं है कि भारतीय लोकतत्त्वोंका स्थान सर्वोच्च है। लोकतत्त्वोंकी जडें लोकमें गहरी पैठ गई हैं। लोकतत्त्वोंका महत्त्व भारतीयोंके लिए निर्विवाद है। ऐसा होनेपर भी आग लगनेसे पहलेही कुआं खोदना अच्छा होता है।

इसके लिए मुझे दो मार्ग दिखाई देते हैं।

(१) लोकतत्त्वोंकी खोज करना। (२) साहित्यकी विविध विधाओंमें बिखरे पडे लोकतत्त्वोंका भारतीयोंको दर्शन कराना।

(१) लोकतत्त्वोंकी खोज करना इतनी कम अवधिमें असंभव है। इसलिए मैंने अंधाकुआं द्वारा दूसरे मार्गका अवलंब किया है।

. . . . .